छायावाद, सौ साल बाद

माधव हाड़ा

सौ साल बाद छायावाद पर विचार करना किसी बहुत पुराने बक्से के कपड़ों-गहनों को टटोलने-सँभालने जैसा है। जाहिर है, टटोलने-सँभालने का यह अनुभव बहुत मिलाजुला होगा- गहनों-कपड़ों को टटोलते हुए हम पाएँगे कि उनमें से कुछ सड़-गल गए हैं, कुछ का फैशन वापस आ गया है और कुछ ऐसे हैं जो चलन से बाहर हो गए हैं। छायावाद की स्थिति भी कमोबेश ऐसी ही है- उसका कुछ अब अनुपयोगी-अप्रासांगिक हो गया है, तो कुछ की चलन में वापसी हो गई है और कुछ ऐसा है, जो मूल्यवान तो बहुत है, पर अब यह चलन में नहीं है। छायावाद का महत्त्व निर्विवाद है। छायावाद कई अर्थों में आधुनिक हिंदी कविता का प्रस्थान बिंदु है- यहाँ से कई प्रवृतियाँ शुरू हुईं, जिसमें से कुछ तो वहीं ठहर गईं और कुछ का आगे पल्लवन और विस्तार हुआ। सौ साल बाद छायावाद को पढ़ते-समझते हुए यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह एक आंदोलन था और आंदोलन का अच्छा-बुरा जो होता है, वो सब इसमें भी था। छायावाद को परंपरा और विरासत की तरह ही पढ़ा-समझा जाना चाहिए। अज्ञेय ने कभी कहा था कि *विरासत-परंपरा पोटली बँधे पाथेय की तरह है, जिसको रास्ते में बार-बार उलट-पलटकर देखते रहना चाहिए।*

छंद से मुक्ति छायावाद की सबसे बड़ी उपलब्धि है। छंद से कविता को अलग करना कितना मुश्किल काम था, यह छायावाद के दौरान और उससे पहले छंद और कविता के संबंध को जानकर ही अच्छी तरह समझा जा सकता है। छंद उस समय कविता के कविता होने की सर्वोपरि और सबसे जरूरी अर्हता थी। बिना छंद के कविता की कल्पना ही मुश्किल काम था।

1.

छायावाद आधुनिक हिंदी कविता का पहला और कुछ हद तक अंतिम आंदोलन था। आगे चलकर हिंदी कविता में उठापटक तो कई तरह की हुई, लेकिन उसमें सही अर्थों में आंदोलन जैसा कुछ नहीं हुआ। हिंदी कविता छायावाद की शुरुआत में बहुत कम उम्र की थी और इतनी कम उम्र में उसका इस तरह आंदोलनकारी हो जाना कुछ आकस्मिक और चौंकाने वाला है। छायावाद आंदोलन था- हड़बड़ी, खेमेबाजी, आरोप-प्रत्यारोप, खंडन-मंडन आदि जिस तरह से किसी आंदोलन में होते हैं, वे सब छायावाद में थे। कविता की इस नयी चाल-चलगत का समर्थन छायावादी कवियों ने खुद उत्साहपूर्वक किया। कविता से बाहर कविता के लिए इतने लम्बे-चौड़े स्पष्टीकरण दिए गए। अपनी कविता के लिए कवियों को कैफियत देने की जरूरत हिंदी में पहली बार महसूस की गई। कविता

संकलनों की लंबी-लंबी भूमिकाएँ लिखी गईं, जिनमें संकलित कविताओं की नयी रीति-नीति का खुलासा था। ये भूमिकाएँ बाद में इस आंदोलन में समझने-समझाने की ऐतिहासिक दस्तावेज सिद्ध हुईं। *पल्लव* और *परिमल* की भूमिकाओं को कविता की नयी चाल-चलगत का घोषणा पत्र माना गया। खास बात यह है कि इन संकलनों की भूमिकाएँ बहुत लंबी थीं। *पल्लव* के 110 पृष्ठों में से 40, *परिमल* के 263 पृष्ठों में से 23 और *दीपशिखा* के 85 पृष्ठों में से 63 पृष्ठ की भूमिका के थे। इस दौरान कविता की इस नयी चाल-चलगत के समर्थन और विरोध में कई पत्रिकाएँ निकलीं। *मतवाला, सुधा, प्रभा, विशाल भारत, सरस्वती* आदि इसी तरह की पत्रिकाएँ थीं- कवियों और आलोचकों ने इन पत्र-पत्रिकाओं में छायावाद के समर्थन और विरोध में लेख लिखे। आलोचकों और कवियों ने एक-दूसरे की धारणाओं के प्रतिवाद में भी लेख लिखे। प्रसाद का *काव्यकला और अन्य निबंध* एक निबंध की प्रतिक्रिया में ही लिखा गया। छायावादी कवियों ने अपनी कविता पर जटिल और दुरुह होने के आरोप की प्रतिक्रिया में अपनी कविताओं की व्याख्याएँ और टीकाएँ भी लिखीं।

छायावाद हिंदी कविता का पहला आंदोलन था, जिसके नामकरण की जरूरत महसूस हुई और जो आलोचकों के संज्ञान में आया। आलोचकों ने नकारात्मक अर्थ में छायावाद का नामकरण किया, लेकिन जब यह संज्ञा चल निकली, तो छायावाद के समर्थक और विरोधी इसके अर्थ निर्धारण और व्याख्या में जुट गए। मुकुटधर पांडेय, महावीरप्रसाद द्विवेदी और रामचन्द्र शुक्ल ने *छाया* शब्द को केन्द्र में रखकर अपनी अलग-अलग व्याख्याएँ कीं। रामचंद्र शुक्ल ने *छाया* को यूरोपीय ईसाई शब्द *फैंटसमाटा* से जोड़ दिया। शुक्ल छायावाद के मुखर आलोचक थे। उन्होंने छायावाद की अज्ञात की जिज्ञासा को *ढोंग* कहा। उन्होंने एक कविता में लिखा कि *लालसा अज्ञात की बता के ढोंग रचते जो / शब्दों का झूठ-मूठ, अब वे हों सावधान*। उन्होंने इसके कुछ लाक्षणिक प्रयोगों को *अजायबघर के जानवर* कहा। विरोध के बावजूद उन्होंने किंतु-परंतु के साथ इस नयी काव्य प्रवृत्ति की अपने इतिहास में आधुनिक काव्यधारा के तृतीय उत्थान के रूप में पहचान की। उन्होंने इस काव्य प्रवृत्ति को जगह तो दे दी, लेकिन यह कहने से नहीं चूके कि यह कविता का स्वाभाविक रास्ता नहीं है। उन्होंने लिखा कि *यह वाद क्या प्रकट हुआ, एक बने-बनाए रास्ते का दरवाजा खुल पड़ा और हिंदी के कुछ नए कवि उधर एकबारगी झुक पड़े। यह क्रमशः अपना बनाया हुआ रास्ता नहीं था*।

छायावाद ऐसा आंदोलन है, जिसमें अपनी परंपरा का सचेत और मुखर विरोध है। कोई काव्य प्रवृत्ति या नवाचार अंततः रूढ़ि में निःशेष होने के लिए अभिशप्त है और इस रूढ़ि या रीति का विरोध और अतिक्रमण भी कवि का स्वभाव और धर्म है। छायावाद की खास बात यह है कि इसमें परंपरा या रूढ़ि का हाथ उठाकर सचेत भाव से विरोध है। खासतौर पर काव्य भाषा के रूप में ब्रज और कविता में छंद व्यवहार का जैसा मुखर और उग्र विरोध छायावाद के दौरान हुआ, वैसा इससे पहले और बाद में कभी नहीं हुआ। ब्रजभाषा का विरोध करते हुए *पल्लव* की भूमिका में पंत ने लिखा कि *हम ब्रज की इस जीर्ण-शीर्ण (अवधी सहित) छिद्रों से भरी, पुरानी छींट की चोली को नहीं चाहते। इसकी संकीर्ण कारा में बंदी हो, हमारी आत्मा वायु की न्यूनता के कारण सिसक उठती है। हमारे शरीर का विकास रुक जाता है। हमें यह पुराने फैशन की मिस्सी पसंद नहीं, जिससे हमारी हँसी की स्वाभाविक उज्ज्वलता रंग जाती, फीकी और मलिन पड़ जाती है। यह बिल्कुल आउट ऑफ डेट हो गई है*। आगे उन्होंने और लिखा कि *मुझे तो उस तीन-सौ चार वर्षों की वृद्धा के शब्द बिल्कुल रक्त-माँसहीन लगते हैं*। छंद पर आक्रमण सभी ने किए, लेकिन निराला का स्वर उनमें सबसे उग्र था। उन्होंन *परिमल* की भूमिका में छंद

की अनुपयोगिता और अप्रासंगिकता पर विस्तार से विचार किया। उन्होंने *परिमल* की भूमिका में लिखा कि *मनुष्यों की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बँधन से छुटकारा पाना है। और कविता की मुक्ति छंदों से अलग हो जाना*। इसी नयी प्रवृत्ति का प्रतिरोध भी बहुत व्यापक, तीव्र और सचेत भाव से था। विरोधियों ने इसको *अनर्थ, विप्लव* और *रोग* की संज्ञा दी। विरोधियों ने छायावाद पर कभी अपने नाम से, तो कभी छद्मनाम से आक्रमण किए।

छायावाद की समवेत पहचान बनाने की कोशिशें बार-बार हुईं, लेकिन उसमें वैयक्तिक पहचानें बहुत मुखर थीं, इसलिए यह पहचान कभी इन पहचानों को एक साथ समेटनेवाली नहीं बन पाई। यह सही है कोई पहचान बनाने के लिए सरलीकरण की जरूरत पड़ती है, लेकिन वैयक्तिक स्वर बहुत मुखर हो, तो फिर इस पहचान में उनके सीमित या समाप्त होने का ख़तरा भी रहता है। छायावाद में कवि व्यक्तित्व इतने मुखर और पारदर्शी हैं कि वे पहचानों और सरलीकरणों से बाहर अलग दिखाई पड़ते हैं। आलोचकों के सामने भी छायावाद को किसी एक संज्ञा या पहचान में समेटना चुनौती का काम रहा है। रामचन्द्र शुक्ल इस काव्य प्रवृत्ति को छायावाद, स्वच्छंदतावाद और रहस्यवाद की अलग-अलग पहचानों में तलाशते रहे। इसमें से किसी एक संज्ञा में इन सबको समेटने में उनको असुविधा हुई। यद्यपि वे रहस्यवाद के प्रशसंक थे, छायावाद में कुछ हद तक रहस्यवाद भी सम्मिलित था, लेकिन फिर भी वे इसको रहस्यवाद नहीं कह पाए। उन्होंने इसके लिए नया शब्द *कुच-कचस्पर्शी रहस्यवाद* गढ़ा। नंददुलारे वाजपेयी की भी यही दुविधा थी। उन्होंने इस प्रवृत्ति को केवल छायावाद कहने से गुरेज किया। उन्होंने महादेवी को रहस्यवादी, लेकिन उनकी शैली को छायावादी कहा। उन्होंने प्रसाद को छायावादी, रहस्यवादी और स्वछंदतावादी, तीनों माना। निराला को उन्होंने स्वछंदतावादी कहा। उन्होंने छायावादी केवल पंत को माना। नामवर सिंह ने आगे चलकर सभी को छायावादी तो कहा, लेकिन छायावाद में उन्होंने चित्रण की सूक्ष्मता के साथ रहस्यवाद की अज्ञात की जिज्ञासा और स्वच्छंदतावाद की रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा को भी सम्मिलित किया। छायावाद के तमाम सरलीकरणों के बावजूद महादेवी इसकी वृहद्त्रयी कभी नहीं अँट पायी। परंपरा के साथ संबंध और कविता में उसके निवेश को लेकर चारों कवियों का नजरिया भी अलग-अलग तरह का है। परंपरा से घनिष्ठता प्रसाद के यहाँ सबसे अधिक है, उनसे कुछ कम निराला के यहाँ है, जबकि पंत और महादेवी के यहाँ यह और अलग तरह से है। छायावाद के कवियों की भाषा और मुहावरा भी एक-दूसरे से बहुत अलग है।

2.

छायावाद के कई मूल्यांकन हुए और यह लगभग निर्विवाद है कि यह उपलब्धिप्रधान आंदोलन था। छंद से मुक्ति छायावाद की सबसे बड़ी उपलब्धि है। छंद से कविता को अलग करना कितना मुश्किल काम था, यह छायावाद के दौरान और उससे पहले छंद और कविता के संबंध को जानकर ही अच्छी तरह समझा जा सकता है। छंद उस समय कविता के कविता होने की सर्वोपरि और सबसे जरूरी अर्हता थी। बिना छंद के कविता की कल्पना ही मुश्किल काम था। छंद से मुक्ति के लिए संघर्षरत छायावादी कवियों ने भी यह नहीं सोचा था कि कविता इतनी जल्दी छंद से मुक्त हो जाएगी। निराला ने एक जगह लिखा कि *दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हिंदी में कविता के मुक्त स्वरूप को देखते के लिए अभी हमें बहुत दिनों तक अपेक्षा करनी पड़ेगी*। छंद से मक्ति लंबी जद्दोजहद के बाद हुई। *परिमल* में संकलित कविताएँ छंदबद्ध, भिन्न छंद और स्वच्छंद, तीनों तरह की हैं। छंद से मुक्ति भी छंद को केंद्र में रखकर हुई- कविता के लिए अर्थ की लय को अर्हता के रूप में मान्यता तुकांत, अतुकांत, स्वच्छंद छंद के विभिन्न चरणों से गुजरने के

बाद ही मिल पाई। *पल्लव* और *परिमल* की भूमिकाओं में यह जद्दोजहद साफ देखी जा सकती है। निराला और पंत ने बहुत विस्तार से खड़ी बोली और पारंपरिक छंद, मात्रिक छंद और खड़ी बोली और वर्णिक छंद और खड़ी बोली के संबंध के आचित्य-अनौचित्य पर विस्तार से विचार किया। पंत ने हिंदी के तब के लोकप्रिय छंद कवित्त को हिंदी कविता के लिए अनुपयोगी सिद्ध करते हुए इसे हिंदी का औरसजात नहीं, पौष्यपुत्र माना। उन्होंने *पल्लव* की भूमिका में लिखा कि *सवैया और कवित्त छंद मुझे हिंदी की कविता के लिए उपयुक्त नहीं जान पड़ते*। उनके अनुसार *कवित्त को अलंकार बहुत चाहिए। उनके अपने शब्दों में अपनी कुलवधू की तरह दो एक नये आभूषण पाकर ही वह प्रसन्नता से प्रदीप्त नहीं हो उठता, गणिका की तरह अनेकानेक वस्त्र-भूषण ऐंठ लेने पर ही कहीं अपने साथ रसालाप करने देता है।* पंत की इस धारणा का बहुत विरोध हुआ। खुद निराला ने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा कि पंत को कवित्त छंद अच्छा नहीं लगता, इसका कारण उनके स्वभाव में स्त्रीत्व गुण की प्रधानता है। पंत ने हिंदी की संयुक्त क्रिया पर भी आपत्ति की- उन्होंने इसे दो सींगोंवाला हिरण कहा। इस जद्दोजहद की गंभीरता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि तत्कालीन हिंदी साहित्यिक समाज के लिए छंद से अलग कविता के अस्तित्व की कल्पना भी मुश्किल थी। लोग छंद मुक्त कविता के लिए छंद की ही रबर या केंचुआ छंद जैसी संज्ञाएँ इस्तेमाल कर रहे थे। निराला और पंत की छंद से मुक्ति के लिए वैदिक उदाहरण दिए। वेदों के दैवीय होने की धारणा के आधार पर निराला ने व्यंग्य किया कि *अजी, परमात्मा स्वयं अगर रबड़ छंद और केंचुआ छंद में लिख सकते हैं, तो मैंने कौनसा कसूर कर डाला।*

छायावाद का सबसे बड़ा योगदान अभिव्यंजना और भाषा के संस्कार-परिष्कार का है। छायावाद से पहले तक खड़ी बोली का काव्यभाषा के रूप में प्रयोग बहुत सीमित था और यह सूक्ष्म और कोमल भावनाओं-अनुभूतियों को धारण करते में असमर्थ थी। छायावादी कवियों ने इसको निरंतर संस्कार-परिष्कार और अभ्यास से इस योग्य बनाया। छायावादी कवियों का नजरिया स्वच्छंदतावादी, मतलब रूढ़ियों से मुक्ति होने का था, इसलिए उन्होने ऐसे शब्दों और अभिव्यंजना रूपों की की खोज की जो उपलब्ध से अलग और नए थे। उन्होंने उपलब्ध ऐसे रूपों को पुनर्नवा किया। छायावादी ने अपने अभिव्यंजना क्षमता के विकास के लिए हिंदी के पर्याय शब्दों को भिन्न अर्थ छवियों से समृद्ध किया। हिंदी में छायावाद से पहले तक पर्याय शब्दों के अर्थ कमोबेश समान थे, लेकिन छायावादी कवियों ने इनको सूक्ष्म अंतर के साथ प्रयोग कर इनमें नए अर्थ की प्राण-प्रतिष्ठा की। उन्होंने ब्रजभाषा के समर्थक और आग्रही रूढ़िवादियों के इस तर्क को कि खड़ी बोली काव्य रचना के लिए उपयुक्त भाषा नहीं है, गलत सिद्ध करने के लिए आग्रह और उत्साहपूर्वक खड़ी बोली को कोमल और वैविध्यपूर्ण किया। छायावादियों ने संस्कृत के कई तत्सम शब्द रूपों को पुनर्नवा किया। छायावाद के दौरान संस्कृत के कई तत्सम शब्द रूप हिंदी के अपने शब्द समूह में सम्मिलित हो गए।

यह आश्चर्यजनक है कि छायावाद ने इस बहुत कम समय में बहुत कुछ बदल दिया। यह इसकी आंदोलनात्मक त्वरा और उत्तेजना से संभव हुआ। छायावाद की उपलब्धियाँ बहुत हैं और उनकी चर्चा अब हमारी आदत हो गई है, लेकिन लंबे समय बाद इसकी सफलता की पड़ताल या खुदाई हमें वहाँ भी ले जाती है, जहाँ जाने की आदत हमसे छूट गई है।

छायावादी कवियों का नजरिया स्वच्छंदतावादी था, लेकिन हिंदी की बहुत प्राचीन प्रगीत परंपरा को पुनर्नवा करने और इसको खड़ी बोली के अनुरूप ढालने में

उनके योगदान भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रगीत की पद रचना के रूप में परंपरा हमारे यहाँ बौद्धों के चर्यागीतों से चली आती है। प्रगीत या पद रचना परंपरा का संगीत से गहरा संबंध है। इसका आवयविक संगठन- ध्रुव, उदग्रह, मेलापक, अंतरा और आभोग संगीतशास्त्रीय है। भक्ति आंदोलन के दौरान पद रचना खूब हुई और इसके आवयविक स्वरूप का सरलीकरण भी हो गया। छायावाद के दौरान इस पद रचना का प्रगीत के रूप में खूब प्रयोग हुआ। छायावाद मूलत: मुक्तक प्रगीत आंदोलन था। कुछ लोगों की यह धारणा सही है कि छायावादियों को आख्यान में सफलता नहीं मिली। छायावाद का एकमात्र प्रबंध *कामायनी* प्रबंध या आख्यान नहीं है। सही मायने में यह एक प्रगीत रचना है। विच्छिन भावावेग, जो छायावाद के केन्द्र में के लिए प्रगीत सबसे उपयुक्त मध्यम था। प्रगीत की समृद्धि छायावाद के दौरान अपने चरम पर है। नंददुलारे वाजपेयी ने छायावाद के दौरान प्रगीत के संबंध में निष्कर्ष निकाला कि *प्रबंध काव्य कोई रसीला फल है, जिसका आस्वादन छिलके, रेशे, बीज आदि निकालने पर ही किया जा सकता है, तो प्रगीत रचना उसी फल का रस है, जिसे हम तत्काल घूँट-घूँट पी सकते हैं*। प्रगीत का विस्तार और समृद्धि छायावाद के दौरान इसलिए हुई, क्योंकि कमोबेश सभी छायावादी कवि संगीत के भी जानकार थे। निराला और पंत संगीत के शास्त्र की बारीकियों का भी ज्ञान था। निराला स्वयं गाते भी थे। निराला के एक कविता संकलन का नाम ही *गीतिका* है और इसकी रचनाएँ रागाधारित हैं।

कविता को जैसा महत्त्व और सम्मान छायावाद के दौरान प्राप्त हुआ, वैसा बाद में कभी नहीं हुआ। यह विडंबना है कि बाद में कविता निर्भर और द्वितीय कोटि का कर्म होती गई। छायावाद के दौरान कविता एक स्वायत और संपूर्ण कर्म थी- यह किसी विचार या दर्शन पर निर्भर या उसकी जुगाली नहीं थी। पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि केवल कवि थे और कविता ही उनका कर्म-व्यवसाय था। यहाँ कविता स्वयं एक कला या दर्शन थी और छायावादी कवियों को इस पर विश्वास और पूरा भरोसा था। निराला की कवि और कविता के संबंध में राय बहुत ऊँची थी। उन्होंने अपनी एक टिप्पणी में संस्कृत का एक सुभाषित उद्धृत किया था, जो इस तरह है- *कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभू*। आगे चलकर कविता के महत्त्व और प्रतिष्ठा का क्षरण होता गया और कविता एक परजीवी और निर्भर अनुशासन में बदलती गई। कविता के स्वतंत्र और संपूर्ण कर्म का आग्रह करने वाले नए माहौल में हाशिए पर चले गए।

3.

छायावाद हिंदी कविता का आरंभिक आंदोलन था, इसलिए उसकी अपनी कुछ बुनियादी अंतर्निहित चारित्रिक कमजोरियाँ भी थीं। सौ साल बाद इस पर विचार करते समय उनको अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। ख़ास बात यह है कि छायावाद के अपने हल्ले-गुल्ले और उठापटक के दौरान उनकी चर्चा भी बहुत थी। विडंबना यह है कि बाद में इसके मूल्यांकन के दौरान इनको कमोबेश अनदेखा ही कर दिया गया। छायावाद के विरोधी इसको हिंदी कविता के विकास की सामान्य और स्वाभाविक अवस्था नहीं मानते थे। उनके अनुसार यह हिंदी कविता की अल्पकालीन *आई और गई* जैसे असामान्य अवस्था है। निराला और छायावादी कवियों की राय तो इससे अलग थी, लेकिन अनजाने में निराला ने एक बार छायावाद को *मियादी बुखार* कह दिया था। थी। उन्होंने छायावाद के बहुत प्रखर और मुखर विरोधी सुकवि किंकर महावीरप्रसाद द्विवेदी की एक टिप्पणी की प्रतिक्रिया में खुद छायावाद से कहलवाया कि *वैद्यराज आप गलती कर रहे हैं। मैं मियादी बुखार हूँ, अपना वक़्त पूरा किए बिना उतरूँगा नहीं, चाहे मकरध्वज नहीं, मृत संजीवनी पिला दें।* अनजाने में कही गई निराला की यह बात कुछ हद तक सही थी। छायावाद एक आंदोलन था और आंदोलन में जैसी त्वरा, हडबड़ी और उठापटक होती है और जो आपद्धर्म का तर्क होता है, वो सब था और अब यह मानना चाहिए उसमें से सब अच्छा नहीं था। यह

किसी अल्पकालीन बीमारी जैसा था, जो आपकी सामान्य दैनंदिन चर्या को बदल देती है। इस दौरान कुछ बहुत ज़रूरी और सहज को बतौर परहेज छोड़ना पड़ता है और कुछ आपद्धर्म के तहत नया अपनाना पड़ता है। छायावाद की असामान्य अवस्था हिंदी कविता के विकास के इतिहास की कुछ ऐसी ही अवस्था है।

छायावाद के दौरान नकल और भावापहरण की बहुत चर्चा हुई, लेकिन बाद में इस पर विचार नहीं के बराबर हुआ। छायावाद के अपने आंदोलन के विमर्श में– पत्रिकाओं के लेखों– टिप्पणियों में नकल, चौर्यकला, भावापहरण और चोरी–डकैती जैसे शब्द आम थे। छायावाद के दो शीर्ष कवियों ने लंबे लेख लिखकर एक–दूसरे पर चोरी और भावापहरण के आरोप लगाए। निराला का *पंतजी और उनका पल्लव* शीर्षक लंबा लेख उस दौरान खूब चर्चा में रहा। ऐसे ही लेख निराला की कविता में चोरी से संबंधित भी लिखे गए। इन लेखों में सोदाहरण यह बताया गया कि किस कवि का कौन–सा अंश और भाव कहाँ से लिया गया है। यह विवाद इतना बड़ा कि निराला को *परिमल* की भूमिका में यह लिखना पड़ा कि *रचनाओं में दो–चार जगह दूसरों के भाव मुमकिन हैं, आ गए हैं, पर अधिकांश कल्पना, 95 प्रतिशत मेरी अपनी है*। किसी प्रतिष्ठित कवि को अपने मौलिक काव्य संकलन की भूमिका में यह लिखना पड़े कि मेरे ये भाव चोरी के नहीं, मेरे अपने हैं, तो संदेह की गुंजाइश तो बनती है। दूधनाथ सिंह ने इसीलिए *लौट आ ओ धार* में छायावाद के कुछ कवियों की कविता को *इंस्पायर्ड पॉयट्री* कहा है।

छायावादी आंदोलन और कविता में हड़बड़ी और उत्तेजना थी और इस कारण कुछ चीजों के लिए उसमें आग्रह भी अतिरिक्त था। इस अतिरिक्त आग्रह की प्रतिक्रिया आगे चलकर अच्छी नहीं हुई। छायावाद का आग्रह तो बहुत अच्छा था– भावुकता, कल्पना, सूक्ष्म चित्रण, अज्ञात की जिज्ञासा आदि कविता के बुनियादी गुणधर्म थे और इन पर जोर देकर उसने कुछ गलत नहीं किया, लेकिन यह जोर ज्यादा हो गया और बहुत हड़बड़ी और उत्तेजना के साथ भी दिया गया। नतीजा यह हुआ कि छायावाद के उत्साह और हड़बड़ी के कम पड़ने के साथ ही कविता के ये बुनियादी गुणधर्म कविता के अवगुण बन गए और यथार्थ का आग्रह और संप्रेषण, जो कविता के बुनियादी गुणधर्म नहीं हैं, कविता के सर्वोपरि लक्षण का दर्जा पा गए। छायावाद का छंद से मुक्ति का आग्रह अपनी जगह पर सही था, यह इसकी ऐतिहासिक उपलब्धि है, लेकिन इसके दूरगामी परिणाम सकारात्मक के साथ नकारात्मक भी निकले। छायावाद में छंद से मुक्ति छंद की भूमि पर थी, इसके कवि छंद व्यवहार जानते थे, लेकिन बाद में छंद व्यवहर से अनभिज्ञ कई कवियों की कविता छंद से मुक्त होने के साथ कविता से भी मुक्त हो गई। बाद में हिंदी कविता में माहौल कुछ ऐसा बना कि गद्य की अर्थहीन उलटबाँसियों के कविता होने का दावा करने वालों की भीड़ हो गई।

छायावाद बीस–पच्चीस वर्ष का अल्पावधि काव्यांदोलन था। साहित्य के इतिहास में इतने कम समय में कुछ बहुत ध्यानाकर्षक होने गुंजाइश कम ही निकलती है। यह आश्चर्यजनक है कि छायावाद ने इस बहुत कम समय में बहुत कुछ बदल दिया। यह इसकी आंदोलनात्मक त्वरा और उत्तेजना से संभव हुआ। छायावाद की उपलब्धियाँ बहुत हैं और उनकी चर्चा अब हमारी आदत हो गई है, लेकिन लंबे समय बाद इसकी सफलता की पड़ताल या खुदाई हमें वहाँ भी ले जाती है, जहाँ जाने की आदत हमसे छूट गई है। दरअसल छायावाद आंदोलन था और इसकी हड़बड़ी और उठापटक में रुककर देखने–समझने की गुंजाइश बहुत कम थी, इसलिए इसमें कई अतिरंजनाएँ और अंतर्विरोध भी रह गए हैं। ऐसा होने में असाधारण कुछ भी नहीं है, यह बहुत स्वाभाविक है और यह किसी भी आंदोलन की नियति है।

सम्पर्क – अध्येता, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला – 171005 मो. 9414325302